गुलमोहर

डॉ. कविता विकास
मो. 9431320288
9934519534

मिट्टी का रिश्ता सभी रिश्तों में सबसे गहरा होता है। चार दशक पहले छोड़े इस कस्बे में सब कुछ बदल गया था, फिर भी मुझे अपनी गली, अपना घर, विद्यालय और खेल के मैदान सब यूँ याद आ रहे थे मानो कल की बात हो। गुलमोहर की छतनार शाखों की काली परछाइयाँ में खड़े-खड़े लगा कि कुछ तो है जो यह पेड़ मुझे खींच रहा है। जब भी आगे बढ़ती हूँ, लगता है थोड़ी देर और ठहर जाऊँ। आखिरकार उसके नीचे बने चबूतरे में बैठते ही हरी-हरी पत्तियों में छुपा टूटा-सा एक हरा बोर्ड दिख गया, 'वृक्षारोपण-श्री मानवेंद्र' पुरानी स्मृतियों की धुंधली तस्वीर दिखने लगी, मेरे जन्म पर पिताजी ने यह पौधा लगाया था। शाम की ललछइयों की कालिमा में तब्दील हो जाना मुझे अच्छा लग रहा था मानो कोई पहचान न ले, लेकिन कोई पहचानेगा भी कैसे, पैंतीस साल पहले वाले लोग अब यहाँ बचे ही नहीं थे।

रेलवे में कार्यरत पिता जी की मैं तीसरी बेटी थी। बेटे की चाह में पहली बेटी से तीसरी तक में केवल रुदन-क्रंदन ही लोग सुनते रहे थे। पिता जी ने तो बिस्तर पकड़ लिया था। जैसे-जैसे मैं बड़ी होती गयी, शारीरिक विकलांगता भी दिखने लगी। मेरा दायाँ अंग बाएँ से पतला था। एक तरह से पोलियो-ग्रस्त। साथ ही, दाहिने हाथ की अंगुलियाँ भी टेढ़ी-मेढ़ी। बाकी दोनों बहनों का गोरा रंग और पढ़ाई में अव्वल होना उनके बेटी होने पर भी एक राहत थी, लेकिन मुझसे तो पिताजी कभी खुश नहीं रहे। माँ समझाती भी थीं कि वह भी जिगर का टुकड़ा है, भेदभाव नहीं होनी चाहिए, पर माँ की हैसियत भी क्या थी! जिस माँ को देहरी से बाँधकर केवल पति की जरूरतों को पूरा करना जिंदगी की सीख बना दी गयी हो, उसके लिए सुझाव देना आकाश से तारे तोड़ने के समान था। फिर भी वह माँ के जिगर का टुकड़ा थी। बहनों का दाखिला निजी स्कूल में करवाया गया था और उसका सरकारी में। पाँचवीं कक्षा में पिताजी को राजकीय आवासीय बालिका विद्यालय का पता चला, जहाँ सरकारी दर पर करीब-करीब नि:शुल्क शिक्षा ही थी। भावीनगर छात्रावास उसे छोड़ने माँ भी गयीं। बिछोह का दुख क्या होता है, तब समझ में आया था। उससे बड़ी

असुरक्षा की भावना ने माँ-बेटी को ऐसा जकड़ा कि घंटो दोनों गले मिलकर रोते रहे पर पिता जी का दिल नहीं पसीजा। दस साल की कच्ची उम्र में मुझे छात्रावास छोड़ना एक तरह से मेरी जिम्मेदारियों से मुक्त होना ही था। अपने बचपन को मैं आज भी नहीं भुला पायी थी, जाने कब आँखें बरस पड़ीं! माँ ने सीने से सटा कर बुदबुदा कर कहा था, 'जा बेटा, अपने को इतना मजबूत कर ले कि किसी के सहारे की जरूरत न पड़े। अपनी माँ को निर्मम न समझना। समय के साथ सब समझ जाएगी तू।' तब से आज तक समय की हर चोट के निशान मेरे दिलो दिमाग पर अंकित हैं। भारी कदमों से मैंने गेस्ट हाउस का रुख किया। मनोहरपुर बहुत बदल गया था, फॉरेस्ट विभाग का गेस्ट हाउस उसी मैदान में बना था जहाँ शाम को बच्चे खेला करते थे, लेकिन कदम थे जो अपनी मनमर्जी किए जा रहे थे। गेस्ट हाउस न जाकर मैं पिछवाड़े की उस विशाल चट्टान तक आ गयी जहाँ अक्सर अपनी सहेलियों के साथ लुका-छिपी खेला करती थी। बरसात में छप-छप करते इसी चट्टान पर सब दोस्त मिलकर खेलते, घोघो रानी, कितना पानी या फिर तोहर पनिया में छुपुक-छैयाँ। याद करते-करते ही मैं ठहठहा कर हँस पड़ी। याद करने को तो बहुत कुछ था लेकिन जिन्हें भूलने में मैंने उम्र गुजार दी, उनका विस्मृत होना ही ठीक था। विद्यालय की प्राचार्या कमला रानी ने पहले दिन ही समझ लिया था कि यह लड़की अपने लड़की होने का दंश भोग रही है। उसे उस पर बहुत प्यार आ रहा था। उसने उसी दिन से उसे अपनी बेटी बना लिया। कुछ महीने उसके माँ-बाप छात्रावास उससे मिलने लगातार आते, बहने भी आतीं लेकिन एक दिन माँ ने कह दिया, मन बड़ा भारी हो जाता है, कोमल से अलग होते समय। अब मैं नहीं आऊँगी। पिताजी को तो जैसे मुँह-माँगा इनाम मिल गया। छुट्टियों में छात्रावास खाली कराया जाता तो मुझमें घर जाने का उत्साह भर जाता लेकिन दो-तीन बार घर जाकर देखा कि मेरे आने से पापा को कोई खुशी नहीं होती बल्कि मेरे वापस जाने के दिन गिनते रहते। जब यह बात प्राचार्या कमला दी को पता चली तो उन्होंने प्यार की झप्पी लगाते हुए मुझे आदेश दे दिया, 'अब तुम मेरे साथ ही अपनी छुट्टियाँ बिताओगी। जहाँ तुम्हारी पूछ नहीं होती, वहाँ मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। जब तुम्हारा मन करे अपने घर जाने का, कहना, मैं भेज दूँगी।' कमला रानी का बचपन भी ऐसा ही था। हालात की नजदीकियों ने उन्हें एक-दूसरे के करीब ला दिया। कमला दी मेरे बिना खाना नहीं खातीं थीं। उन्हें शाम के समय हॉकी के मैदान में मुझमें एक विशेष प्रतिभा का पता चला, मैं पक्षियों की बोली निकाल लेती थी और इशारे से उन्हें अपने पास बुला लेती। और तो और, गीली मिट्टी से छोटी-छोटी मूर्तियों का निर्माण बड़ी आसानी से कर लेती। कदाचित मेरी टेढ़ी-मेढ़ी अंगुलियाँ इस कार्य के लिए एक वरदान थीं। कमला दी को मेरे जीवन का उद्देश्य मिल गया था। पढ़ाई में औसत होते हुए भी कला के क्षेत्र में स्कूल का नाम खूब रोशन किया। जब कमला दी का तबादला बिलासपुर हुआ तो मैं भी उनके साथ वहाँ आ गयी। विद्यालय परिसर में एक पंछी बाड़े का निर्माण कराने के लिए मैंने बहुत मेहनत की। जब किसी घायल पंछी की मरहम-पट्टी करती और पक्षी को नवजीवन मिलता, तो लगता मानो अपने ही जख्मों पर मरहम-पट्टी कर ली हो। धीरे-धीरे मेरी बनाई मूर्तियों की मांग होने लगी। विद्यालय के अंदर-बाहर मुख्य स्थानों पर मेरी बनाई कई मूर्तियाँ सजी हुई थीं। निरीक्षक साहब जब भी आते इन मूर्तियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते। मुझे इसके लिए अवॉर्ड भी मिला। मैंने फाइन आर्ट्स में ही खुद को आगे बढ़ाया और बाद में फाइन आर्ट कॉलेज सुल्तानपुर की प्राचार्या बनी। इस बीच कमला दी की तबियत खराब रहने लगी थी। उन्होंने रिटायरमेंट के पहले ही नौकरी छोड़ने का मन बना लिया,तो फिर मैंने उन्हें अपने पास सुल्तानपुर बुला लिया। वह ज्यादा दिन जीवित नहीं रहीं। दीदी की सेवा-सुश्रुषा से मुक्त होने के बाद मूर्ति कला का प्रशिक्षण देने मैं दूर-दूर जाती। इस व्यस्तता में मुझे अपने अतीत पर आँसू बहाने का भी वक्त नहीं मिला। एक दिन अचानक एक चिट्ठी मिली, सो यहां मनोहरपुर आना पड़ा। चिट्ठी राजेश की थी। प्रिय दीदी, तुम्हें पता नहीं होगा, तुम्हारे हॉस्टल जाने के तीन साल बाद मेरा जन्म हुआ। रंग-रूप बिलकुल तुम-सा। जब मोहल्ले वाले कहते कि मैं तो कोमल का जेरोक्स कापी हूँ तब तुम्हारे बारे में माँ ने बताया। अगर मैं कहूँ कि तुम्हें याद करके माँ-पापा बहुत उदास हो जाते थे, तो शायद तुम्हें यकीन नहीं होगा। लेकिन यह सच है। पापा तो तुम्हें त्यागने के अपराध बोझ को झेल नहीं पाए और तनाव में रहते-रहते गुजर गए। माँ ग्लानि से भरी हुई थीं। कमला दी के तबादले के बाद यह पता

पृष्ठ सं. 37 पर शेष भाग

सदमा था और वह पूरी तरह टूट गई। उसे पहली बार पंजाबी कवि 'पाश' की कविता याद आयी, 'कितना बुरा होता है आदमी के सपनों का मर जाना।'

जमींदार शिवशंकर अपने इकलौते बेटे को खोकर पागल-सा हो गया। मोहन ने मरने से पहले पिता को पत्र लिखा था, 'आपकी वजह से मैं इस दुनिया को छोड़ रहा हूँ। अगर आप पश्चाताप करना चाहते है तो पवित्रा को बेटी के रूप में अपनाओ।' पवित्रा को जब इसकी जानकारी मिली तो उसे समाज के इन रीति रिवाजों और जमींदार की काली करतूत से नफरत हो गई। जमींदार ने माफी माँगते हुए उसे बेटी का दर्जा देना चाहा पर पवित्रा ने साफ-साफ इनकार कर दिया।

पवित्रा एलएलबी की विद्यार्थी थी उसने सोच समझकर डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के मार्ग पर चलने का निर्णय लिया। आज वह कितनी बेसहारा लड़कियों का सहारा बनकर छात्रावास चला रही है। अब उसके पास एक ही मकसद है कोई भी सामाजिक रूढ़ियों का शिकार न हो। दिन भर की दौड़-धूप के बाद वह थक-सी जाती है और शाम के समय बौद्ध मठ से आनेवाले यह शब्द उसे सुकून देते हैं।

बुद्धम् शरणम् गच्छामि।
धम्म् शरणम् गच्छामि।
संघम् शरणम् गच्छामि।❑

पृष्ठ सं. 27 का शेष भाग

चला कि तुम भी बिलासपुर चली गयी हो, लेकिन उसके बाद कहाँ हो, यह नहीं पता चला। बीमारी की अवस्था में तुमसे मिलने की अंतिम इच्छा लिए माँ भी चल बसीं। पिता जी ने तुम्हारे नाम कुछ फिक्स्ड डिपॉजिट किए थे जो मेरे पास हैं। कुछ महीने पहले अखबार में तुम्हें राष्ट्रपति अवार्ड मिलने की सूचना पढ़ी। साथ में तुम्हारे जीवन से जुड़ी वह सभी बातें, जिसे मां-पिताजी कभी-कभी बताया करते थे। तुम्हारी पथ-प्रदर्शक में कमला दी का नाम देख कर यह जानकारी पुख्ता हो गई कि तुम ही मेरी दीदी हो। तुम्हारी तस्वीर देखकर मेरी पत्नी ने कहा, 'इनका चेहरा आपसे मिलता है।' अब शक की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। तुम मनोहरपुर आने की सूचना दो, मैं भी वहीं आता हूं।

तुम्हारा भाई
राजेश

पापाजी ने जीते जी अगर थोड़ा भी इस प्रेम को दिखाया होता तो शायद सारी उपेक्षा मैं भूल जाती और छुट्टियों में भी घर जाने की ललक बनी रहती, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और सम्भवत: मेरी लम्बी अनुपस्थितियों ने उन्हें विचलित कर दिया। गेस्ट हाउस के कमरे में चाय पीते-पीते पुन: मुझे अपने उस परिवार की याद आ गयी। तभी सेवक ने सूचना दी कि कोई मुझसे मिलने आया है। बैठक में देखा, मेरा भाई राजेश दोनों बाहें फैलाए मेरी ओर आ रहा था। खून के रिश्ते की गरमाहट क्या होती है, आज महसूस किया। राजेश ने बहुत देर तक सबके बारे में बताया, बहनों की शादी-ब्याह, उनका पता आदि।

पापा द्वारा मेरे लिए रखे फिक्स्ड डिपॉजिट का चेक मुझे सौंपते हुए राजेश ने कहा, 'दीदी, माँ की बहुत इच्छा थी कि तुम घर वापस आ जाती। अब चलो, मेरे बच्चे भी तुम्हारा साथ चाहते हैं।' मैंने उसके आँसू पोंछते हुए कहा, 'मेरा परिवार बहुत बृहद है, भाई। हजारों विद्यार्थी हैं, अनेक पशु-पक्षी। स्वावलम्बन की राह पर चलने वाली अनेक उपेक्षित बहनों की मैं आशा हूँ। मेरे आशियाने का नाम भी गुलमोहर है, जिसकी छाया में हर थका-माँदा प्राणी आराम पाता है। तुम जाओ और अपना खयाल रखना। हाँ, तुम्हें कभी किसी चीज की जरूरत हो तो बेहिचक मेरे पास आ जाना।' राजेश के जाने के बाद मैंने आईने के सामने खुद को देखा। धूसर रंग, बालों की चाँदी, आँखों के नीचे की कालिमा। बहुत कुछ बदल गया था। जो नहीं बदला था, वह मेरा पोलियो ग्रस्त हाथ और टेढ़ी अंगुलियाँ। मेरी कमजोरी ही मेरी ताकत बन गई थी। उसके एवज में मिला देशवासियों का प्यार मेरी कमाई थी। जीवन की आपाधापी में यादें विस्मृत होती गयीं लेकिन माँ का वह अमर वाक्य अब भी जहन में था, 'जा बेटी, अपने को इतना मजबूत कर ले कि किसी के सहारे की जरूरत न पड़े।' पापा के चेक को दूसरे दिन ही भुनाने के लिए बैंक भेज दिया। मेरे नाम के वो सारे रुपए कॉलेज की दान-पेटी में डालते हुए उन्हें कृतज्ञतापूर्ण प्रणाम किया।❑

तथागत बुद्ध कहते हैं

एक पल, एक दिन को बदल सकता है, एक दिन एक जीवन को बदल सकता है, एक जीवन इस दुनिया को बदल सकता है।